मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

श्रीमती पार्वती
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
रा0 स्ना0 महा वि0, बेरीनाग,
पिथौरागढ, उत्तराखण्ड
Email: parurastogi123@gmail.com

सारांश

भारतीय वाङमय में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही होता आ रहा है। 'राष्ट्र' एक जीवमान इकाई है। वर्षों, शताब्दियों व लम्बे कालखण्ड में इसका विकास हुआ है। मनुष्य की सहज सामुदायिक भावना ने इसको जन्म दिया जो कालान्तर में 'राष्ट्र' के रूप में स्थापित हुआ। इस प्रकार 'राष्ट्र' एक स्थायी सत्य है। और राष्ट्रीयता एक विशिष्ठ भावना। जब हम कहतें हें कि व्यक्ति के समान 'राष्ट्र' की भी अस्मिता होती है तो हमारे समक्ष भूमिखण्ड में निवास करने वाला मानव समुदाय उपस्थित होता है। अतः 'राष्ट्र' की भूमि और भूमि के निवासी और इन निवासियों की संस्कृति से 'राष्ट्र' का स्वरूप निर्मित होता है।

प्रस्तावना

मनुष्य की भाव वृत्तियों में राष्ट्रीयता भी एक प्रमुख वृत्ति है। उसमें राष्ट्रप्रेम की भावना प्रमुख है। मनुष्य जिस भूमि पर जन्म लेता है जिसका अन्न ग्रहण कर, जल ग्रहण कर अपना विकास करता है, उसके प्रति प्रेम की भावना का उसके जीवन में सर्वोच्च स्थान होता है। इस प्रकार 'राष्ट्र' की प्रगति, सुख शान्ति, प्रशासनिक, सुव्यवस्था एवं सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय चेतना की परम आवश्यकता होती है।[1]

साहित्य का सदैव मनुष्य से समबन्ध रहा है, जो सामुदायिक विकास में सहायक होता है और सामुदायिक भावना राष्ट्रीय चेतना का एक प्रमुख अंग है।

साहित्य समाज का दर्पण होने के कारण समाज में जो घटित होता है, साहित्यकार उसको महसूस करता है। भोगता है, उसका वर्णन करता है, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की प्रेरणा देता है। इसलिए साहित्य का राष्ट्रीय एकता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। साहित्य सदा देषकाल के अनुसार जनभावनाओं को व्यक्त करता रहा है। मनुष्य के जीवन में राष्ट्र के प्रति स्नेह की भावनाओं का बडा महत्व है, और कहीं न कहीं साहित्य का अध्ययन अनुशीलन व्यक्ति को राष्ट्र भावना के लिए प्रेरित करता है। राष्ट्र के प्रति व्यक्ति को कर्तव्यों से रूबरू कराता है। हिन्दी साहित्य ने इस दायित्व का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है तथा समय

–समय पर जनता को जागृत कर अपने दायित्व का निर्वहन किया है, क्योंकि राष्ट्रीय भावना राष्ट्र की प्रगति का मूल मत्र है।

हिन्दी साहित्य में एक नाम ऐसा है, जिनका सम्पूर्ण काव्य राष्ट्रभावना से ओतप्रोत है। वह हैं, प्रसिद्ध 'राष्ट्रकवि' मैथिलीशरण गुप्त। गुप्त जी अपमे युग की समस्याओं के प्रति सदैव सवेंदनशील रहे। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से जनजागरण का काम किया। बालकृष्ण शर्मा नवीन के विपलव गान की इन पंक्तियों का सार गुप्त जी की कृतियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत है।

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल–पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आये,
एक हिलोर उधर को जाये।[2]

गुप्त जी कहते थे कि कवि कर्म केवल मनोरंजन नहीं होना चाहिए उसमें ज्ञान, उपदेश और प्रेरणादायी शक्ति होनी चाहिए।

केवल मनोरंजन न कवि कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।[3]

सन् 1904 से 1964 तक देश में राष्ट्रीय चेतना की धारा जो एक रूप ले रही थी, राष्ट्रकवि ने अपनी लेखनी के माध्यम से उसका पोषण किया। विश्व शान्ति, अहिंसात्मक आन्दोलन, धर्मनिर्पेक्षता, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समानता, कृषि उद्योग व विज्ञान की प्रगति राष्ट्रीय चेतना के सभी पहलुओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए देश को सम्प्रदाय, मत और जन्म से उत्पन्न भेदों को दूर करने, भारतीय के रूप में सोचने और कर्तव्य पालन की प्रेरणा दी। गुप्त जी ने देशप्रेम को सर्वोपरि सिद्ध करने का प्रयास किया।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है।[7]

गुप्त जी का पहला काव्य संग्रह रंग में भंग है। उनकी प्रसिद्ध रचनाएं – साकेत, यशोधरा, द्वापर, सिद्धराज, पंचवटी, जयद्रथ–वध और भारत–भारती हैं। उन्होने अपनी सभी रचनाओं के माध्यम से समाज को वैचारिक पृष्ठभूमि प्रदान की ।

भारत –भारती 1912–13 में लिखी गयी मैथिलीशरण गुप्त जी की प्रसिद्ध काव्य कृति है। भारत– भारती के प्रकाशन से ही गुप्त जी सर्वप्रिय कवि बन गये। यह राष्ट्रीय भावना को प्ररित करने वाली सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती है। गुप्त जी ने इस कृति के माध्यम से पराधीन काल में मुँह खोलने का साहस न कर सकने वाली सामान्य जनता का नैराश्य निवारण करने का पूर्ण प्रयास किया और जनता को आत्मविश्वास से परिपूर्ण ऊर्जामयी वाणी देने का प्रयास किया।

गुप्त जी ने कहा कि राष्ट्रीयता की पहली पहचान मानवता है। उन्होंने निम्न पंक्तियों के माध्यम से इस भावना को अभिव्यक्ति दी –

निज गौरव का नित ध्यान रहे,
हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे।
मरणोत्तर गुंजित गान रहे,
सब जाय अभी पर मान रहे।
कुछ हो न तजो निज साधन को,
नर हो न निराष करो मन को।[3]

इस प्रकार गुप्त जी ने समाज में क्रान्ति पैदा करने का दृढ संकल्प लिया तथा समाज में जहाँ शोषण, झूठ, अधिकारों का दमन, नैतिकता का ह्रास, स्वार्थ की भावना बढती जा रही थी, उसे वे बदलना चाहते थे। वे नैतिकता, पवित्रता, अहिंसा, स्वार्थ विहीन आजाद भारत की कल्पना करते थे। इसलिए गुप्त जी अतीत के गौरवशाली इतिहास से भी जन सामान्य को परिचित कराना चाहते थे।

सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है वह कौन? भारतवर्ष है।[3]

गुप्त जी भारतीय सभ्यता का गुणगान करते हुए कहते हैं कि हमारे देशवासी दूसरों के दुःखों को भी अपना समझ उसका निदान खोजते थे–

अन्याय अत्याचार करना तो किसी पर दूर है,
जिसका किया हमने किया उपकार ही भरपूर है।
पर पीड़ितों का त्राण कर जो दुःख हम खोते नहीं,
तो आज हिन्दुस्तान में ये पारसी होते नहीं।[3]

आज भारत पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण तो कर रहा है, परन्तु उसे इस बात का आभास भी होना चाहिए कि भारत देश के स्वामी विवेकानन्द जैसे विचारकों से पाश्चात्य देश भी कृतकृत्य हो जाते थे।

भूलों हुओं को पथ दिखाना यह हमारा कार्य था,
राजत्व क्या है। जगत हमको मानता आचार्य था।[3]

निश्चय ही यह पंक्तियाँ भारत के अतीत का गौरव गान करते हुए, उसके जगत गुरू होने की विशेषता को चरितार्थ करता है।

युग की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना और युग बोध को आत्मसात् करना गुप्त जी के लिए सहज था। उन्होंने अपने काव्य में उन उपेक्षित नारियों को स्थान दिया, जो काव्य में सदा के लिए उपेक्षित पात्र बन गयी थी। जैसे –यशोधरा, उर्मिला, कैकयी, मंथरा आदि को अपने काव्य के प्रमुख पात्रों के रूप में स्थान दिला कर गुप्त जी ने समाज में स्त्री पुरूष समानता लाने की प्रेरणा दी।

बीते कुछ समय से नारी विमर्श की बहुत बातें हो रही हैं। महिला सशक्तिकरण को महत्व दिया जा रहा है, नारी को पुरूष की बराबरी का दर्जा देने की बात हो रही है। गुप्त जी को

गुजरे पाँच दशक से ज्यादा हो गया है। उस समय ही गुप्त जी ने नारियों की दशा को देख नारी विमर्श पर लिखना आरम्भ कर दिया था।

यशोधरा जैसा खण्डकाव्य व साकेत जैसा महाकाव्य इसी नारी पीड़ा का उदाहरण है। उनका केन्द्र सिद्धार्थ न होकर यशोधरा है।

उन्होंने नारी उपेक्षा के दर्द को उक्त पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि यशोधरा की स्थिति का वर्णन इस प्रकार कर रहे हैं–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध आँखों में पानी।[4]

उक्त पंक्तियाँ– भारतीय नारी की करूण गाथा को सजीव कर देती है। यषोधरा में भारतीय नारी की वेदना, करूणा, ममता, त्याग और दायित्व बोध की सहज भावभीनी अभिव्यक्ति स्पश्ट होती है। सिद्धार्थ जब पत्नी यशोधरा व नवजात पुत्र को छोड़कर महल से निकले यह सोचकर कि उनकी पत्नी कहीं उन्हें रोक न ले। लेकिन मैथिलीशरण गुप्त की यशोधरा स्वाभिमानी है। उसे सिद्धार्थ के घर छोड़कर जाने का दुःख नहीं है। उसे दुख इस बात का है कि वे उसे पथ बाधा समझकर उससे बिना कहे चले गये।

यशोधरा में गुप्त जी की सारी संवेदनाएं यशोधरा के साथ है। यशोधरा कहती है–

सखि वे मुझसे कहकर जाते,
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ–बाधा ही पाते।[2]

गौतम बुद्ध बने सिद्धार्थ को सम्पूर्ण समाज जानता है, परन्तु वह स्त्री यशोधरा पत्नी मात्र ही रह गयी थी। जिसके समर्पण, त्याग, कतर्व्यनिष्ठता, और स्वाभिमान को गुप्त जी ने प्रस्तुत किया। उन्होंने यशोधरा को पति परायण स्त्री के रूप में दिखाया है। वह अकेले ही पुत्र राहुल का पालन पोषण करती है व राजसी ठाठ का परित्याग कर देती है वह अनेक बाधाओं के आने पर भी कर्तव्य पथ से विमुख नहीं होती है।

साकेत जैसा ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में राष्ट्र चेतना एवं मानव मूल्यों का संचार भर देता है। उर्मिला को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत इस राम कथा में नैतिकतावादी आदर्श, सांस्कृतिक चेतना व नारी विमर्श स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।गुप्त जी ने साकेत की उर्मिला और लक्ष्मण के दामपत्य जीवन का ह्रदय स्पर्शी प्रसंग व उर्मिला की विरह दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। उक्त पंक्तियों में उर्मिला के त्याग समर्पण और उसकी विरह दशा को समझ सकते हैं–

मानस मन्दिर में सति, पति की प्रतिमा थाप,
जलती थी उस विरह में बनी आरती आप।[5]

साथ ही कैकयी के पश्चाताप को दर्शाकर उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष भी प्रस्तुत किया है–'युग–युग तक चलती रहे कठोर कहानी, रघुकुल में थी एक अभागी रानी' यहाँ कैकयी को रामचरितमानस की कैकयी से अधिक ऊँचा उठा दिया है। रामचरितमानस में कैकयी के पछतावे का उल्लेख है 'कुटिल रानी पछतानी'[1] चित्रकूट में कैकयी अपने पश्चाताप के साथ ही राम को

अयोध्या वापस लौटने की विनय करती है–

यह सच है तो अब लौट चलो तुम घर को
सबने रानी की ओर अचानक देखा
वेधव्य –तुशारावृत्ता यथा विधु– लेखा
बैठी थी अचल तथापि असंख्य तरंगा
वह सिंही अब थी हहा, गोमुखी गंगा।[5]

इस प्रकार गुप्त जी ने अपने काव्य में उन नारियों को स्थान दिया जो सदा के लिए उपेक्षित पात्र बन गयी थी।

किसान नामक कविता में किसान और मजदूर के शोषण की पीड़ा संत्रास की मर्म गाथा देखने को मिलती है–

पाया हमने प्रभो कौन सा त्रास नहीं है।
क्या अब भी परिपूर्ण हमारा ह्रास नहीं है,
मिला हमें क्या यही नर्क का वास नहीं है।
विश खाने के लिए टका भी पास नहीं है।[4]

भारतीय किसानों का संघर्ष उस युग की विकट समस्या बन गया था। जमीदारी प्रथा के कारण किसानों की स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। जमीदार और उनके कारिन्दे किसानों से मनमाना लगान लेते थे और एक निष्चित मियाद के बाद किसानों को जमीन से बेदखल कर देते थे। जिस कारण से इन किसानों को साल भर मेहनत करने के बाद भी भरपेट भोजन नहीं मिल पाता था। कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि के कारण अच्छी पैदावार नहीं होती तो ये लोग लगान को चुकाने के लिए कर्ज लेते थे। जिस कारण कम से कम कर्ज की मात्रा भी बढती जाती थी। कर्ज चुकाने के लिए उनके घर द्वार बैल सब नीलाम हो जाते थे। अकाल के कारण भी किसान काल के ग्रस बन जाते थे।इस प्रकार किसान पर सब ओर से सामाजिक व्यवस्थाओं की मार पड़ रही थी । अकाल का हृदय विदारक वर्णन गुप्त जी की निम्न पंक्तियों मे स्पष्ट है–

दुर्भिक्ष मानो देह धर कर घूमता सब ओर है, अन्न हा हा अन्न का रव गूँजता सब ओर है।[6]

गुप्त जी ने सामान्य जन, नारी, किसान, मजदूर, पराधीन जनता आदि सभी की पीड़ा को उजागर कर समाज में समानता लाने का अथक प्रयास किया। गुप्त जी का मानना था कि जब तक मजदूर, किसान, नारी, उपेक्षित वर्ग आदि को समाज में समानता नहीं मिलेगी उनकी पीड़ा को महसूस नही किया जायेगा व उसका निदान नही होगा तब तक राश्ट्र प्रगति नही कर सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रचेतना के विकास में हिन्दी साहित्य का जितना योगदान है,उनमें राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान समय में राष्ट्रात्मा कमजोर हो गयी है। देश वाह्य और आन्तरिक शत्रुओं के चक्रव्यूह में फंस कर अपना

संगठित स्वरूप खोने लगा है। राष्ट्र की एकात्मा का स्थान सामप्रदायिकता ले रही है, कहीं धर्म के नाम पर, कहीं जाति तो, कहीं वर्ग के नाम पर साम्प्रदायिकता अपनी जड़ें जमा रही है और एकात्मा के बन्धन ढीले पड़ रहे हैं। देश में चारों तरफ अराजकता का माहोल बना हुआ है। राजनैतिक पार्टियाँ निज स्वार्थ के लिए जनता को मोहरा बना रही है। चोरी, डकेती, लूट ये सब तो सामान्य बात हो गयी है, मानव हत्या की भयावह निर्ममता दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। ऐसी स्थिति में आज मैथिलीशरण गुप्त जैसे राष्ट्रकवि की प्रासंगिकता और अधिक बढ गयी है। गुप्त जी ने पराधीनता के दौर में समाज के प्रत्येक वर्ग के अन्दर राष्ट्रचेतना को कूट–कूट कर भरने का प्रयास किया ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की राष्ट्रभावना की जितनी आवश्यकता पराधीन भारत को थी, उतनी ही आवश्यकता समकालीन भारत को व भविष्य के भारत के लिए रहेगी, क्योंकि उस समय तो विदेशी हमारे देश को अन्दर से खोखला कर रहे थे। वर्तमान समय में तो हमारे अपने देश के लोग ही यह काम कर रहे हैं। राष्ट्र की भावना को संकुचित करने के लिए एक वर्ग अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है। उन लोगों के लिए मैथिलीशरण गुप्त जी की ये पंक्तियाँ कितनी प्रासंगिक है–यह समझने योग्य है

जो भरा नही भावों से,
बहती जिसमें रसधार नही।
वह ह्रदय नही पत्थर है,
जिसमें स्वदेश का प्यार नही।[7]

आजादी के इतने वर्षों बाद भी गरीबी भुखमरी बेरोजगारी बढती जा रही है। आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक ,नैतिक सभी स्तरों में गिरावट बढती जा रही है। इस पतन को रोकने के लिए बिना शुद्ध राष्ट्रभावना के कोई भी राष्ट्र प्रगति की ओर नही बढ सकता है।

यद्यपि हम हजारों वर्षों के इतिहास को जैसा का वैसा लेकर नही चल सकते, तथापि हमारी जीवन पद्धति के जो मूल तत्व है, उन्हें पूर्ण रूप से भुला कर भी हम नही चल सकते। हमें उन्हें युगानुकूल बनाकर चलना होगा।

अतः सुप्त भावनाओं को जगाने के लिए आज भी मैथिलीशरण गुप्त जैसे राष्ट्रकवियों की इस देश को अत्यन्त आवश्यकता है।

यद्यपि समय के फेर ने वे दिव्य गुण छोड़े नहीं हैं,
किन्तु अब भी देश में आदर्श कुछ थोड़े नहीं हैं।[3]

आज आवश्यकता इस बात की है, कि हम अपनी संस्कृति, संस्कारों को पहचाने और अतीत के आदर्शों को युगानुकूल कर पुनः स्थापित करें।

सन्दर्भ ग्रंथ

1– *राष्ट्र जीवन की दिशा*– दीनदयाल उपाध्याय, सम्पादक रमाशंकर अग्निहोत्री, भानुप्रताप शुक्ल। लोकभारती प्रकाशन लखनऊ। पृं0 **37, 38**

2–*हिन्दी साहित्य का इतिहास* –बाबू गुलाबराय,सम्पादक प्रो0 विश्वम्भर 'अरूण'। लक्ष्मीनारायण प्रकाशन आगरा। पृ0 **206, 207, 210**

3–*राष्ट्रवाणी* – मैथिलीशरण गुप्त सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी। साकेत प्रकाशन चिरगांव (झाँसी)। पृं0 **02, 05, 17, 101**

4–*भारतीय साहित्य का भावसंसार* – डॉ0 आरसू, डॉ0 परिस्मिता बरदलै। जय भारती प्रकाशन इलाहाबाद। पृं0 **206, 208**

5–*साकेत*– मैथिलीशरण गुप्त। पृं0 **131, 144**

6–*भारतीय साहित्य के निर्माता,* मैथिलीशरण गुप्त–रेवती रमण।, पृं0 **56, 57**

7–http//www.divyahimachal.com

8– http//www.panchjanya.com